R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-4 अप्रेल 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

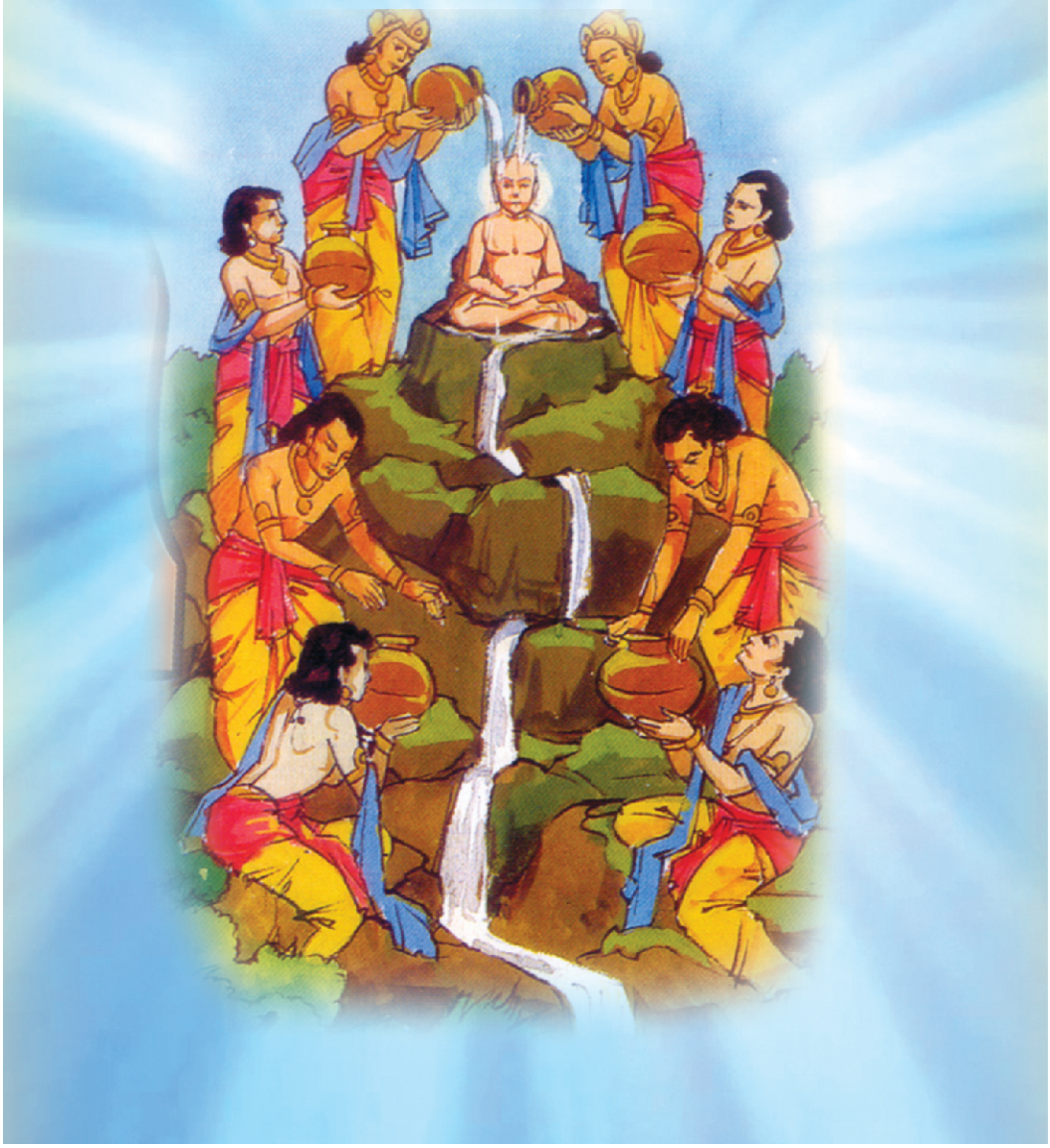

तोहि छोरि कैं आन कूँ, नमूँ न दीनदयाल।
जैसैं तैसैं कीजिए, मेरौ तौ प्रतिपाल॥

अर्थात् – हे दीन-दयाल प्रभो! मैं आपको छोड़कर अन्य किसी को भी नमन नहीं करता हूँ। आप भी जैसे-तैसे / किसी भी प्रकार से / कुछ भी करके मेरा तो प्रतिपालन, संरक्षण कीजिए।

भावार्थ – मैंने भली-भाँति विचारकर एकमात्र आपको ही अपना आदर्श सुनिश्चित किया है; अत: आपके पथ पर चलकर, अब मैं नियम से अपने स्वरूप में पूर्ण स्थिर हो, सभी दु:खों का क्षयकर, अव्याबाध सुख-शांति को प्राप्त करूँगा। इससे मैं सदा-सदा के लिए सुरक्षित हो जाऊँगा ॥61॥

बिन मतलब बहुते अधम, तारि दए स्वयमेव।
त्यौं मेरौ कारज सुगम, कर देवन के देव॥

अर्थात् – हे देवों के देव! आपने बिना किसी प्रयोजन के ही स्वयं अनेकों अधम-प्राणियों को तार दिया है; उसी प्रकार से मेरा कार्य भी सुगम कीजिए।

भावार्थ – अनेकों अधम-प्राणी आपके मार्ग को अपनाकर संसार-सागर से पार हो गए हैं; अर्थात् आपका मार्ग अत्यंत सुगम है; अत: मैं भी आपके मार्ग को अपनाकर नियम से पार हो जाऊँगा—ऐसा मुझे अब विश्वास हो गया है ॥62॥

निंदौ भावौ जस करौ, नाँहीं कछु परवाह।
लगन लगी जात न तजी, कीजौ तुम निरबाह॥

अर्थात् – हे प्रभो! अब चाहे निन्दा करे या प्रशंसा-इसकी मुझे रंचमात्र अपेक्षा या चिंता नहीं है; आपसे लगी हुई लगन अब छूटना, असंभव है; अत: आप तो मेरा निर्वाह कीजिए।

भावार्थ – जगत से पूर्ण निरपेक्ष हो सत्यता के आधार पर मैंने आपके मार्ग का अनुकरण किया है। पूर्ण पुरुषार्थपूर्वक स्वरूप में स्थिरता से वह अवश्य ही पूर्ण होगा। अब सिद्ध-दशा की व्यक्ति / प्रगटता होगी ही—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है ॥63॥ **[बुधजन-सतसतई, दोहा 61, 62, 63]**

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-4 (वी.नि.सं. 2544) अप्रेल 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

जीवन आत्मामय ही करना, उपयोग भले ही न हो सूक्ष्म।
करने योग्य की होय प्रतीति, वर्तमान पात्रता यही ॥46॥

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य न बंधता, बंध मुक्त व्यवहार कथन।
मकड़ीसम यह जीव उलझता, कर उपाधियों का चिन्तन॥
चैतन्य वस्तु तो मुक्त सदा ही, ज्ञानानन्द सुखों की खान।
कर विभाव से भिन्न प्रयत्न तो, मुक्त सदा ही आतमराम ॥47॥

दुःख लगे पूरा विकल्प में, किंचित शान्ति नहीं भासे।
यदि विकल्प में दुःख लगे तो, मार्ग नियम से ही पावे ॥48॥

सारे दिन में आतमपोषक, और अन्य कितने परिणाम।
उसे जाँच कर, पुरुषारथ कर, गुण ग्राही बन आठों याम ॥49॥

सत् की गहरी जिज्ञासा कर, आत्म परिणमन हो गति में।
यदि सत् के संस्कार हों गहरे, प्रगटे सत्य अन्य गति में ॥50॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में
सहयोग-
**श्रीमती जयाबेन
जयन्तीलाल दोशी
परिवार, मुम्बई**

क्या - कहाँ

नाटक सुनत हिये फाटक.... 5
धर्मात्मा की गंभीर परिणति का.... 8
जीवत्व आदि शक्तियों से... 18
पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि..... 24
अभिप्राय 29
ज्ञानी-अज्ञानी 30
समाचार-दर्शन 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[श्री समयसार-नाटक के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन]

✱ सार में सार जो आत्मा का अनुभव उसका वर्णन इस समयसार में करेंगे। मुक्तिपंथ में कारणरूप ऐसा आत्मा का अनुभव कैसे हो, वही मुख्य बात इस समयसार में कहेंगे। शुद्ध निश्चय की कथनी कहेंगे और उसके साथ शुद्ध व्यवहाररूप जो वीतरागी दशा, मोक्षमार्ग वह भी कहेंगे।

✱ इस समयसार में अनुभव का वर्णन करना कहा; तो पूछते हैं कि अनुभव किसे कहना ? उस अनुभव का लक्षण कहते हैं:—

वस्तु विचारत ध्यावतें मन पावे विश्राम;
रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव याको नाम।

चिदानंदस्वरूप आत्मा का सच्चा स्वरूप लक्ष्य में लेकर उसे विचारने और ध्याने से चित्त विश्रांति पाता है; परभावों की आकुलता से छूटकर अतीन्द्रिय सुख होता है, उसका नाम अनुभव है।

✱ आत्मा का ऐसा अनुभव प्रगट करना, वह इस समयसार का तात्पर्य है; वही धर्म है, वही मोक्षमार्ग है। उस अनुभव की महिमा कहते हैं:—

अनुभव चिंतामणि-रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप॥

अहा, अनुभव, वह तो अतीन्द्रिय आनंद को देनेवाला चिंतामणि है; जड़ चिंतामणि तो बाह्य वस्तुएँ देता है, परंतु आत्मा के अनुभवरूप चिंतामणि तो मोक्ष प्रदान करता है। आत्मा के अनुभव में मोक्ष के आनंद का अनुभव होता है। आत्मा का जो परम निराकुल शांतरस, उसका समुद्र

स्वानुभव में उल्लसित होता है, इसलिए अनुभव को रसकूप कहा है। आत्मा के अनुभव में जो शांति है, वैसी शांति जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है।

इस शास्त्र में बहुत वर्णन करेंगे, परंतु उसमें मूल प्रयोजन तो अनुभव का ही है—कि जिसमें आत्मा के आनंदरस का स्वाद आये। आत्मस्वभाव का अनुसरण करके भवने-परिणमने का नाम अनुभव है, ऐसा अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है।

अनुभव अर्थात् आत्मा का आनंद। आत्मा का आनंद कहो या मोक्ष का आनंद कहो; इसलिए अनुभव को मोक्षस्वरूप कहा है।

अनुभवी को इतना ही करना है कि सदा निजानंद में रहे। अहो! जगत में सारभूत आत्मा ही है कि जिसके अनुभव में आनंद है; अन्यत्र कहीं आनंद नहीं है। आत्मा में आनंद है, इसलिए हे जीव! तू आत्मा में रुचि लगा।

पर से भिन्न जो चिदानंदस्वभाव, उसे जानकर उसके सन्मुख होने से जो विकल्पातीत आनंद का स्वाद आया, वह शुद्धात्मा का अनुभव है; मोक्षप्राप्ति के लिए वह अनुभव चिंतामणिरत्न के समान है; वह अनुभव स्वयं शांतरस से भरपूर कुआँ है; शांतरस का झरना आत्मा के अनुभव में बहता है। अनुभवदशा में चैतन्य के आनंद का समुद्र उल्लसित होता है; उस आनंद की क्या बात! उस शांतरस की क्या बात! जिसमें ऐसा अनुभव है, वही मोक्षमार्ग है; रागादि कोई भाव मोक्षमार्ग नहीं हैं। मोक्षमार्ग का ऐसा अनुभव कहो या निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कहो; आत्मा के ऐसे अनुभव बिना मोक्ष का फाटक नहीं खुलता; मोक्ष का फाटक आत्मा के अनुभव द्वारा ही खुलता है और ऐसा अनुभव यह समयसार नाटक बतलाता है; इसलिए कहा है कि—**नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।**

अनुभव में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि सबका समावेश हो जाता है और उस अनुभवरूप एक ही मोक्षमार्ग है; अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मुक्ति के कारणरूप ऐसे अनुभव का अधिकार इस शास्त्र में है।

देखो तो सही, पंडित बनारसीदासजी ने आत्मानुभव की कितनी महिमा गायी है। अरे, यह तो आत्मा के अपने घर की बात है, परंतु जीव ने स्वयं अपनी महिमा को कभी जाना नहीं। वह महिमा बतलाकर आत्मा का अनुभव कराते हैं। ऐसे अनुभव में क्या-क्या आता है, यह बतलाकर कहते हैं कि—अहो! आत्मानुभव के समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

जैसे रसायन अनेक प्रकार के होते हैं। एक रसायन ऐसा होता है, जिसे पत्थर पर छिड़कने से सोना बन जाता है। अज्ञानी जड़ रसायन की महिमा देखते हैं और ज्ञानी तो चैतन्य के अनुभवरूपी रसायन के निकट जड़ रसायन को धूल के समान देखते हैं।

जिस प्रकार पत्थर में से सोना बन जाता है, उसी प्रकार एक रसायन ऐसा भी होता है जिसके द्वारा सर्व प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं, परंतु उस रसायन से कहीं भवरोग नहीं मिटता। यह अनुभव रसायन ही ऐसा है, जिसके द्वारा तुरंत भवरोग का अंत होकर मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। अहो! ऐसे अनुभवरस का हे जीवों! तुम सेवन करो! आत्मा के अनुभव की, और ऐसे स्वानुभवी संतों की जितनी महिमा की जाये, उतनी कम है! स्वयं ऐसा अनुभव करना ही सार है।

ऐसे अनुभव की रीति इस समयसार में बतलाई है, इसलिए कहा है कि—

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।'

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-27, अंक-4]

जो निंदा तैं ना डरै, खा चुगली धन लेत।
बा तैं जग डरता इसा, जैसे लागा प्रेत॥

अर्थात् जो निंदा से नहीं डरता, चुगली खा धन लेता है; उस निर्लज्ज, चुगलखोर व्यक्ति से लोग ऐसे डरते हैं; जैसे भूत लगने से डरते हैं।

भावार्थ निर्लज्जता और चुगलखोरी; ये स्व-पर—दोनों के लिए महा अहितकर हैं॥ **[बुधजन-सतसई, उपदेशाधिकार, दोहा 410]**

धर्मात्मा की गंभीर परिणति का स्वरूप समझानेवाला आत्म-अनुभूतिप्रेरक आनंदमय प्रवचन

यह भाद्रपद कृष्णा दोज का मंगल-प्रवचन है। धर्मात्मा की गंभीर चेतनापरिणति—जो कि समस्त रागादि परभावों से अत्यंत भिन्न, चैतन्य में एकत्वभाव से निरंतर वर्तती है—उस परिणति को पहिचानने से चैतन्य का और राग का भेदज्ञान होकर आत्मसाक्षात्कार होता है—वहीं धर्मात्मा की परमार्थ भक्ति है, ऐसी भक्ति द्वारा अवश्य मुक्ति होती है। उस चेतनापरिणति की सच्ची पहिचान और आत्म-अनुभूति कैसे हो, उसका अद्‌भुत वर्णन गुरुदेव ने इस प्रवचन में किया है। गुरुदेव कहते हैं कि यह तो मंगल दोज के अवसर पर अध्यात्म का मिष्टान्न परोसा जा रहा है। आत्मजिज्ञासु जीव इस प्रवचन के भावों का मनन करके आत्मलाभ प्राप्त करो।

1. इस नियमसार में निश्चय प्रत्याख्यान की बात चल रही है। प्रत्याख्यान करनेवाले जीव को प्रथम तो परभाव से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय और अनुभव होता है।
2. जिन परभावों को छोड़ना है, उन्हें स्वयं से भिन्न जाने बिना किस प्रकार छोड़ेगा?
3. अंतर्मुख होकर अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने से ज्ञान में से परभाव का त्याग सहज ही हो जाता है, क्योंकि ज्ञान परभाव के त्यागस्वरूप ही है।
4. परभावों से भिन्न, मैं स्वयं आनंदस्वरूप हूँ, ऐसे अपने आनंदस्वरूप में रहूँ, वही सुख है और वही परभाव का त्याग है।
5. पहले आत्मा के स्वभाव में मग्न होकर ऐसी प्रतीति करने से इंद्रियातीत

आनंद का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धा में समस्त परभावों का अत्यन्त प्रत्याख्यान हो जाता है।

6. सम्यग्दृष्टि स्वयं को केवलज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप अनुभव करता है, उसमें परभाव का एक अंश भी नहीं होता। ऐसे आत्मा के श्रद्धा -ज्ञान के बल द्वारा निजस्वरूप में एकाग्रता होने पर परभावों का प्रत्याख्यान हो जाता है।
7. स्वरूप में स्थित ज्ञान स्वयं परभाव के त्यागस्वरूप होने से प्रत्याख्यान है। ज्ञानभाव की जो अस्ति है, उसमें रागादि विरुद्ध भावों की नास्ति है।
8. प्रथम ज्ञान और रागादि का अत्यंत स्पष्ट भेदज्ञान करना चाहिए। सच्चा भेदज्ञान करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।
9. अहो, जहाँ आत्मा का ऐसा स्वरूप अपने अनुभव में आया वहाँ दूसरों से पूछना नहीं रहता। समयसार की 206वीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! अन्य से न पूछ... ज्ञानस्वरूप आत्मा अनुभव में आने पर तुझे स्वयं सब समाधान हो जायेंगे। संदेह नहीं रहेगा, तथा पूछना भी नहीं पड़ेगा।
10. अहा, ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करानेवाला यह समयसार शास्त्र जगत का अद्वितीय चक्षु है, आत्मा को प्रकाशनेवाला अजोड़ परमागम है। कुन्दकुन्दस्वामी जैसे महान आचार्यदेव ने भगवान की वाणी सुनकर तथा अपने आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव द्वारा इस परमागम की रचना की है। जगत के मुमुक्षु जीवों को आत्मा का अद्‌भुत वैभव दिखता है।
11. आत्मा तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप ही सत्य है, वही अनुभव करनेयोग्य है, वही कल्याणरूप है। इस प्रकार अपने सत्य ज्ञानस्वरूप का निर्णय करके हे जीव! तू अपने ज्ञान से ही संतुष्ट हो... तृप्त हो... उसमें स्वयं तुझे परम सुख का अनुभव होगा, फिर तुझे अन्य से पूछना नहीं पड़ेगा। वचन-अगोचर ऐसे अपूर्व आत्मिक सुख का तुझे

अनुभव होगा; वह सुख तुझे स्वयंमेव अपने स्वाद में आयेगा। तू स्वयं वह सुख है, फिर अन्य से क्यों पूछना पड़े ?

12. अपनी वस्तु अपने में देखी, साक्षात् अनुभव किया, वहाँ संदेह क्या ? ज्ञानस्वरूप मैं स्वयं सत्य हूँ, मैं स्वयं ही कल्याण हूँ, मैं ही अनुभवी हूँ और मैं ही सुखस्वरूप हूँ—ऐसा पहले दृढ़ निर्णय करके संवेदन -प्रत्यक्ष से स्वानुभव किया, वहाँ अब किससे पूछना रहा ?

13. अपने पास ही मैंने अपना तत्त्व देखा, और मेरा मोह नष्ट हो गया; अब मैं सर्व कर्मों से अत्यंत रहित, चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही आत्मा द्वारा वर्तता हूँ। निर्विकल्प-वीतरागी परिणति द्वारा मैं स्व में वर्तता हूँ—इस प्रकार धर्मी अपने को अनुभव करता है, उसे संवर-निर्जरा है, उसे प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान है, उसे सुख और धर्म है।

14. धर्मी को नि:शंक प्रतीति है कि मैं राग में नहीं, मैं निर्विकल्पभाव द्वारा अपने चेतनस्वरूप में ही वर्तता हूँ।

15. पहले राग में-विकल्प में, एकत्वबुद्धि के कारण चैतन्य के निधान को ताले में बंद कर रखा था; अब विदित हुआ कि राग से मेरा चैतन्यतत्त्व अत्यंत भिन्न है, वही अपूर्व आनंद के अनुभव द्वारा चैतन्य का खजाना खुल गया; आत्मा में आनंद का अवतार हुआ।

16. ऐसे सम्यग्दृष्टि-सम्यग्ज्ञानी-सत् चारित्रवंत धर्मात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ। अहा ! वे तो जगत के धर्मरत्न हैं ! सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का रत्न है। उसे धारण करनेवाले धर्मात्मा तो धर्मरत्न हैं। भव-भव के क्लेश का नाश करने के हेतु, मैं नित्य उनकी वंदना करता हूँ।

17. किस प्रकार वंदना करता हूँ ? कि निर्विकल्पभाव द्वारा उन जैसे ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा में वर्तता हुआ मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। राग में वर्तने से सच्चा नमस्कार या सच्ची भक्ति नहीं होती, पंच परमेष्ठी ज्ञानी-धर्मात्माओं को सच्चा नमस्कार करनेवाले को अपने ज्ञान और

राग की भिन्नता प्रगट हो गई है। 'ऐसे भाव द्वारा मैं ज्ञानी को नमस्कार करता हूँ।'

18. सिद्ध भगवान आदि पंच परमेष्ठी भगवंत अपने शुद्ध आत्मा में ही स्थिर हैं, इसलिए उन्हें नमस्कार करनेवाला जीव शुद्ध आत्मा की ओर झुकता है, उसी में उन्मुख होता है; उसमें तन्मय होता है और राग से पृथक् हो जाता है। इस प्रकार अपना शुद्ध आत्मा ही सच्चा शरण है। बाह्य में पंच परमेष्ठी का शरण व्यवहार से है।

19. केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुखस्वभावी परम चैतन्यतेज मैं हूँ— ऐसा जिसने अंतर्मुख होकर स्वयं अपने को जाना, उसने क्या नहीं जाना ? स्वयं अपने को देखा उसने क्या नहीं देखा ? तथा उसका श्रवण करने पर क्या श्रवण नहीं किया ? अर्थात् अपना ऐसा शुद्ध आत्मा ही श्रवण करनेयोग्य तथा श्रद्धा-ज्ञान में लेने योग्य सर्वश्रेष्ठ है, उससे ऊँचा अन्य कोई नहीं है।

20. अरे, जीवों ने व्यवहार की-राग की बातें तो, अनंत बार सुनी हैं और उसका आचरण भी किया है, परंतु परम तत्त्व अंतर में कैसा है, उस परमार्थ स्वरूप को प्रेम से कभी नहीं सुना।

21. 'प्रेम से नहीं सुना' ऐसा कहा। 'प्रेम से सुना' तब कहा जाता है कि अंतर की गहराई में उतरकर उसका साक्षात् अनुभव करे। वक्ता ने जैसा स्वभाव कहा है, वैसा स्वभाव अपने लक्ष्य में लेकर अनुभव करे, तभी सच्चा श्रवण किया कहा जाता है।

22. हे जीव ! अपने स्वभाव को तू अनुभव में ले। अंदर में अमृत का सागर भगवान आत्मा है, उसमें मग्न हो, वही आनंद है। उससे बाह्य में जाना तो आकुलता है, पाप है, क्योंकि पवित्रता से विरुद्ध होने से अध्यात्म में उसे पाप कहा है। रागरहित चैतन्य का अनुभव ही पवित्र सुखरूप है।

23. ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा के हृदय में चैतन्यहंस निवास करता

है। तथा चैतन्यशक्तिसंपन्न आनंदमय परमात्मा उसके अंतर में जयवंत वर्तता है।

24. अहो, ऐसा अनुभव करना, उसमें अतीन्द्रिय आनंद का परम स्वाद है।

25. बादाम की बर्फी अच्छी स्वादिष्ट कही जाती है, परंतु वह स्वाद तो जड़ है। यहाँ तो संत आनंद के स्वाद से भरपूर वीतरागी बादामपाक परोसते हैं।

26. आज दोज के मंगल अवसर पर यह बादाम की बर्फी परोसी जा रही है। अंतर में परमात्मा के अनुभवरूप ऐसा बादामपाक सम्यग्दृष्टि ही पचा सकते हैं।

27. ज्ञानी अपने को ऐसा अनुभव करता है कि—

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्तिस्वभाव जो,
मैं हूँ वही, यह चिंतवन होता निरंतर ज्ञानि को॥

(नियमसार : 96)

28. आत्मा केवलज्ञानादि चतुष्टयस्वरूप है। केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय है, वह प्रगट कार्य है और उसके आधाररूप सहज ज्ञान-दर्शनादि चतुष्टय त्रिकाल है।—ऐसे चतुष्टयस्वरूप आत्मा को जानकर धर्मी उसी की भावना करते हैं।

29. —किस प्रकार भावना करते हैं ?

समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त होकर, तथा अपने स्वरूप में अत्यंतरूप से अंतर्मुख होकर, वह अपने ऐसे आत्मा को ध्याता है। मुमुक्षु जीवों को उसी की भावना करनी चाहिए—ऐसा उपदेश है।

30. समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से रहित कहा—उसमें अशुभ या शुभ किसी भी राग की रचना, वह सब बाह्यविस्तार है। बाह्यलक्ष्य से ही राग की उत्पत्ति होती है, अतः समस्त बाह्यभावों से अत्यंत भिन्न होकर, निर्विकल्प चैतन्यपरिणति के द्वारा ही धर्मी अपने अंतर में परमात्मतत्त्व की भावना करता है।

31. अहो, आत्मतत्त्व की यह अलौकिक बात है, इसे जानकर अंतर्मुखरूप से इसी की भावना करनेयोग्य है।
32. 'राग तो है ना'—तो धर्मी कहता है कि भले हो, परंतु वह राग कहीं मैं नहीं हूँ, अपने स्वभाव को मैं अनुभव रागरूप नहीं करता, लेकिन परिणति को राग से भिन्न करके, उस परिणति द्वारा केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ।
33. राग होने पर भी मैं उसकी भावना नहीं करता, उसे अपनेरूप नहीं देखता, उस ओर मेरा झुकाव नहीं; मेरा झुकाव तो अपने चैतन्य परमात्मतत्त्व में है, उस ओर उन्मुख हुई परिणति में रागादि नहीं, इसलिए वह परिणति स्वयं प्रत्याख्यान स्वरूप है।
34. ऐसे आत्मा को जानकर उसकी निरंतर भावना करना—ऐसी वीतरागी संतों की शिक्षा है।
35. अहो, चैतन्यतत्त्व तो परम गंभीर है, उसमें परिणति अंतर्मुख हो, तभी उसका वास्तविक चिंतन एवं भावना होती है।
36. जीव द्रव्यस्वभाव से त्रिकाल ज्ञानस्वरूप तो है ही, परंतु मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा जानती ही है, उस ओर एकाग्र हुई पर्याय; त्रिकाल सन्मुख एकाग्र हुई पर्याय ही जानती है—कि 'मैं ऐसा हूँ'।
37. ऐसी स्वसन्मुख परिणतिरूप परिणमित हो, तभी आत्मा ने अपने सहज स्वभाव का स्वीकार और अनुभव किया कहा जाता है। स्वयं उस भावरूप परिणति हुए बिना उसका सच्चा स्वीकार या अनुभव नहीं होता।
38. इस प्रकार स्व में अंतर्मुख होकर मैंने अपने परम आत्मा को देखा, जाना तथा अनुभव किया। स्वयं अनुभव की हुई अपनी वस्तु में संदेह क्या? स्व-वस्तु की अनुभूति होते ही संदेह टला, भय टला, स्वयं अपने से तृप्त हुआ, निःसंदेह हुआ।

39. समस्त विकल्प-जंजाल को छोड़कर चैतन्य के निर्विकल्प अमृतरस का पान करो!
40. ज्ञानी सदैव ऐसी भावना भाता है कि मैं कारणपरमात्मा हूँ। ज्ञानियों के हृदय-सरोवर का हंस तो आनंदरूप सहज चैतन्य परमात्मा है।
41. परभावों को सदैव अपने से पृथक् रखनेवाला, अर्थात् परभावों से सदैव रहित ऐसा चैतन्य-हंस, उसका ज्ञानी अपने हृदय में ध्यान करते हैं।
42. यह चैतन्य-हंस कारणपरमात्मा, सहज चतुष्टय-स्वरूप त्रिकाल है, वह स्वयं केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय का आधार है, उसे आधार -आधेय के भेद नहीं। आधार-आधेय संबंधी विकल्पों से रहित अनुभूति द्वारा जो परमसुख उत्पन्न होता है, उसका स्थान यह सहज परमात्मतत्त्व है।
43. केवलज्ञानादि के आधाररूप ऐसे अपने तत्त्व का अवलोकन करके (श्रद्धा-ज्ञान करके) ज्ञानी उसकी ही भावना करते हैं। ऐसे तत्त्व की दृष्टि करके धर्मी कहता है कि ऐसे सहज स्वरूप से मैं सदा जयवंत हूँ।
44. जयवंत तत्त्व की सन्मुखता से जो सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञान-सुख की अनुभूति प्रगट हुई, वह जयवंत है।
45. परिणति परभाव से छूटकर जब अंतर्मुख हुई, तब भान हुआ कि ऐसे स्वभाव से मेरा आत्मा जयवंत है।
46. यह कोई विकल्प की बात नहीं है, किंतु धर्मी को अपने अंदर वैसे वेदनरूप परिणति हो गई है।
47. धर्मी को राग से निरपेक्ष, इंद्रियों से निरपेक्ष ऐसे सम्यक् मति-श्रुतज्ञान स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप हैं, अंतर्मुख होकर अपने सहज ज्ञानादि स्वरूप आत्मा को स्वयं जानता है।
48. आत्मा के सहज स्वभावरूप निजभाव को ज्ञानी कभी छोड़ता नहीं,

और रागादि परभावों को कभी अपना बनाता नहीं, वह तो सहज ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप ही अपना चिंतवन करता है:—

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिंतन यही॥97॥

(नियमसार)

49. आत्मा का सहज स्वभाव, वह परमभाव है, उस परमभाव के सन्मुख होकर ज्ञानी अपने आत्मा को कैसा भाता है, उसका यह वर्णन है। ऐसे स्वभाव की भावना अर्थात् उसमें तन्मयभावरूप परिणति, वह परम आनंदरूप तथा मोक्ष का कारण है।

50. निजभाव अर्थात् आत्मा का परम भाव, निजभाव आत्मा के सहज ज्ञान-दर्शन-सुख तथा वीर्यस्वभावरूप है, उसको आत्मा कभी छोड़ता नहीं। स्वभाव और स्वभाववान भिन्न नहीं हैं कि - उन्हें आत्मा छोड़े, चैतन्य के ऐसे एकत्वस्वभाव में संसार-परभाव का प्रवेश कभी नहीं है।

51. मैं तीनों काल अपने ऐसे परम भावरूप ही हूँ—ऐसा जिस पर्याय ने अंतर्मुख होकर स्वीकार किया, वह पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-सुखस्वरूप हुई है। पर्याय अंतर्मुख होकर तथा रागादि से भिन्न होकर, 'परमभावस्वरूप कारणपरमात्मा मैं हूँ'—ऐसा अपने को अनुभवती है, जानती है, देखती है—भाती है।—ऐसे कारणपरमात्मा में उदयादि परभावों का कभी ग्रहण नहीं है।

52. अहो जीवो! ऐसे परमस्वभाव को लक्ष्य में लेकर उसकी भावना करनेयोग्य है। ऐसे स्वभाव की बात का श्रवण भी महा भाग्य से प्राप्त होता है। जिसकी पर्याय अंतर्मुख परिणमित हुई है, वह धर्मात्मा ऐसा जानता है कि मैं तीनों काल सहज स्वभाव से परिपूर्ण परम आत्मा हूँ, मेरे स्वभाव का कभी नाश नहीं है। अरे, ऐसा मैं त्रिकाल हूँ, वहाँ कौन मुझे मारे और कौन मेरी रक्षा करे ?

53. मेरा स्वभाव ही केवलज्ञानादि स्वभाव से सदा भरपूर है; उसका

स्वीकार करने से अब पर्याय में अभूतपूर्व केवलज्ञानादि प्रगट होंगे ही। पर्याय में केवलज्ञानादि भाव नवीन प्रगट हुए, इसलिए वे अभूतपूर्व हैं, परंतु सदैव सहज स्वभाव से तो केवलज्ञानादिरूप ही हूँ। उससे कभी भी पृथक् हुआ नहीं—ऐसा धर्मी अपना चिंतवन करता है, जानता है, श्रद्धा करता है, अनुभव करता है, इसी का नाम भावना है। और यह भावना ही मोक्ष का उपाय है। अत: ऐसे परम तत्त्व की भावना निरंतर करो। राग द्वारा उसकी भावना नहीं होती, रागादि परभावों का नाश करके चैतन्य की सनमुखता से ऐसी भावना की जाती है।

54. अरे जीव! अंतरस्वरूप की गहराई में उतर, वहीं तेरा आत्मा विद्यमान है। रत्न के लिए समुद्र में डुबकी लगानी पड़ती है, उसी प्रकार चैतन्य रस के समुद्र में से सम्यग्दर्शन आदि परम रत्नों की प्राप्ति के हेतु तू अंतर की गहराई में उतर, समस्त परभावों को नाश करके चैतन्य-चमत्कार से भरपूर चैतन्यसमुद्र में डुबकी लगा।

55. चैतन्यतत्त्व की गहराई में उतरी हुई अर्थात् उसके सन्मुख होकर परिणमित हुई परिणतिवाला जीव 'यह मैं हूँ'—इस प्रकार स्वयं को परमात्मस्वरूप देखता है—अनुभव करता है। अहो, अंतर में लीन होकर ऐसे स्वतत्त्वरूप अपना अनुभव करो! एकावतारी इंद्र भी जिसकी बात परम आदर से सुनते हैं—ऐसे इस परमतत्त्व को लक्ष्य में लेकर उसकी भावना करो, उसके सन्मुख परिणति करो।

56. एक इंद्र अपने दो सागरोपम के आयु-काल में असंख्यात तीर्थंकर भगवंतों के पंच कल्याणक महोत्सव मनाता है, असंख्यात तीर्थंकरों के श्रीमुख से ऐसे परमतत्त्व की बात बहुमानपूर्वक श्रवण करता है।—ऐसा यह परमात्म तत्त्व जीवों को महाभाग्य से सुनने को मिलता है।

57. और ऐसे तत्त्व की सम्यक् प्रतीति तथा अनुभव करे, वह तो कृतकृत्य

हो जाता है। इसलिए हे जीवो! अंतर्मुख होकर तुम अपने ऐसे तत्त्व को अनुभव में लो—ऐसा उपदेश है।

58. अंतर में चैतन्यरस का आस्वादन करने के बाद मेरा चित्त अन्य कहीं लगता नहीं, चित्त चैतन्य में ही संलग्न है। निजस्वरूप में लगे हुए चित्त को पर की चिंता करने का अवकाश ही कहाँ है ?

इन 58 मंगलरत्नों के मनन द्वारा हे मुमुक्षुओं! तुम भगवती चेतना को प्राप्त करो!

चैतन्य अनुभूतिवंत... ज्ञानचेतनापरिणत.... धर्मात्माओं को तदाकार नमस्कार!

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

मङ्गलायतन के सम्बन्ध में जानकारी

फार्म नं० 4, नियम नं० 8

पत्रिका का नाम	:	मङ्गलायतन (हिन्दी)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक का नाम	:	पवन जैन (भारतीय)
पता	:	'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
सम्पादक का नाम	:	पण्डित संजयकुमार जैन (भारतीय)
पता	:	उपरोक्त
मुद्रक का नाम	:	पवन जैन (भारतीय)
पता	:	उपरोक्त
मुद्रण का स्थान	:	मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001
स्वामित्व	:	पवन जैन, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)

मैं पवन जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपुर्यक्त विवरण सत्य हैं।

पवन जैन

दिनाङ्क : 01.04.2018 प्रकाशक

जीवत्व आदि शक्तियों से आत्मा का जीवन है

आत्मद्रव्य अनंत शक्तियों अर्थात् अनंत गुणों का पिंड है, जिसको प्रगट दशा में भूतार्थ धर्म करना है, उसे स्वद्रव्य की शरण में आना चाहिए; स्वाश्रय द्वारा ही सहजानंदमय आत्मधर्म की प्राप्ति होती है।

यहाँ जीवत्व शक्ति का वर्णन है—जो आत्मद्रव्य को अवस्थित रहने में कारण है, ज्ञानदर्शनमय चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका स्वरूप-लक्षण है, उसे जीवत्वशक्ति कहते हैं। किंतु रागादि या निमित्तों के साथ उसका लक्ष्य-लक्षण या कारण-कार्यरूप संबंध नहीं है। आत्मा से भिन्न अन्य वस्तुएँ हैं, रागादि व्यवहार भी है, परंतु वह इस जीव की अपेक्षा से अजीव है, अनात्मा है, अवस्तु है। जीवत्वशक्ति के समान अन्य सभी शक्तियाँ ज्ञानमात्रमयी प्रत्येक आत्मा में पर से निरपेक्ष हैं।

लोग पुकारते हैं कि 'जीओ और जीने दो' किंतु पर के द्वारा या राग के अस्तित्व द्वारा जीना, वह तो अशुद्धता है, पुण्य-पापमय आस्रव-बंधरूप होने से वह वास्तव में जीव का जीवन नहीं है।

गुण किसे कहते हैं ? कि द्रव्य के पूर्णभाव में और उसकी तीनों काल की सर्व अवस्थाओं में व्यापक शक्ति को गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं ? गुण के कार्य को, परिणमन को पर्याय कहते हैं, जो क्षेत्र अपेक्षा अपने द्रव्य के संपूर्ण भाग में और काल अपेक्षा से एक समय अपने कार्यकाल में अनित्य तादात्म्य संबंधरूप स्व-द्रव्य में ही व्यापक है। अनंत गुणों के पिंड आत्मद्रव्य में और उसके आश्रय से होनेवाली पर्याय में भी पराश्रयरूप व्यवहार का अभाव है। आत्मद्रव्य में अभेद दृष्टि होने पर अनंत शक्ति के साथ जीवत्व शक्ति भी द्रव्य-गुण-पर्याय में सम्यक्रूप से उछलती है-परिणमित होती है और मिथ्यात्वादि मलिनता का व्यय होता है, उसी का नाम अनेकांत है।

द्रव्य और गुण नित्य होने से ध्रुव उपादान है, स्वसन्मुखता द्वारा निर्मल पर्याय हुई, वह क्षणिक उपादान है।

आत्मा कहीं न जाता है, न आता है, निरंतर स्वचतुष्टय में अवस्थित छह कारकरूप स्वतंत्र परिणमन सहित है और पराश्रयरूप व्यवहार के अभावरूप ज्ञानधारा से ही जीव का जीवन है। जो सफल-सार्थक जीवन है। एक गुण की पर्याय में अनंत गुण की पर्यायें उछलती हैं, अहा, उसकी रमणीयता उसी में है। आत्मा पूर्ण ज्ञानानंदमूर्ति है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और आनंदमय जागृति, वही विभाव से मुक्तिरूपी समाधिमरण है। अज्ञानी न तो जीना जानता है, न मरण को जानता है। प्रत्येक शक्ति स्व से है, पर से, व्यवहार से, निमित्त से नहीं है; इस प्रकार अनेकांत को प्रगट करके भेदज्ञानी जीव अपने पूर्ण अस्तित्व से सदैव जीवित है।

(2) अजड़त्वमयी चितिशक्ति भी आत्मा में नित्य है, जो स्वरूप से है; रागादि व्यवहाररूप से या निमित्त अर्थात् संयोग के कारण से नहीं है; इस प्रकार प्रत्येक शक्ति स्वद्रव्य से अनंतगुण के साथ व्यापकत्व और अनेकांतपना स्वयमेव प्रगट करती है।

यह शक्ति (गुण) भी पारिणामिकभाव से है। पारिणामिकभाव का लक्षण (पंचास्तिकाय गाथा 56 टीका में) 'द्रव्यात्मलाभहेतुक: परिणाम: ।' जिनके द्वारा जीव अपने अस्तित्वरूप है अर्थात् पर से, रागादि व्यवहार से या दस प्राण को धारणरूप अशुद्धता से जीव है, ऐसा नहीं है, किंतु पर से निरपेक्ष स्व से स्व में नित्य अवस्थित है, दर्शन-ज्ञान में अभेद भावरूप अपने से अवस्थित रहता है, और अजड़त्वमयी चितिशक्ति आदि अनंत गुणमय स्वयं परिणमता है, व्यवहार की अभूतार्थता, निश्चय की भूतार्थता, यह अमृतमय अनेकांत जीव का जीवन है।

द्रव्य का लक्ष्य करने से अंदर जो पूर्णशक्तियाँ हैं, वहाँ से सब गुण की पर्याय उछलती-परिणमित होती हैं। एक गुण के निश्चय में दूसरे गुणों की अपेक्षा-आधार नहीं है। गुण के अस्तित्व में मूल कारण गुण है, आधार स्वद्रव्य है, पर्याय का निश्चयकारण पर्याय है, पर्याय उसी पर्यायरूप से सत् है, यह स्वतंत्रता की बात रुचि सहित कभी सुनी नहीं है।

अंतरंग में स्वसंपत्तिरूपी सर्व सामर्थ्य से सदा परिपूर्ण द्रव्य है, उसी के आधार द्वारा स्वाश्रय से परिणमन का नाम धर्मरूपी प्रोषध है। उसके द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग का पोषण होता है।

'सर्वगुणांश सम्यक्त्व।' प्रत्येक गुण परिणमित होता है, जब स्वद्रव्य की श्रद्धा के द्वारा निर्मलता प्रारंभ होती है, तब से द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापकरूप से उत्पाद-व्ययरूप जीव परिणमित होता है, उसका नाम वस्तुस्वभावमय धर्म है। आत्मा में जड़पना किंचित् भी नहीं है, किंतु अनंत गुण में चैतन्यत्व व्यापक रहकर वर्तता है, इस चितिशक्ति का फल ध्रुव उपादान के आश्रय से सभी गुणों की पर्यायों में निर्मलता का प्रारंभ होता है और वह क्षणिक उपादानरूप नयी शुद्धि है।

(3) 'अनाकार उपयोगमय दृशिशक्ति।' शक्ति अर्थात् गुण त्रैकालिक है। सभी गुणों को धारण करनेवाला आत्मद्रव्य है, उसमें दृष्टि करने पर अनंत शक्तियाँ उछलती हैं, परिणमित होती हैं, स्वसन्मुखता से सहित होती हैं। परज्ञेयों का अवलंबन उसमें नहीं है।

साधकदशा में भूमिकानुसार दया-दान का राग आता है किंतु उसमें चैतन्य का परिणमन नहीं होने से उसे अन्य वस्तु-अनात्मा और अभूतार्थ कहकर उसे व्यवहार ज्ञेय में डाल दिया है। कारण कि वास्तव में दया -दानादिक का राग और राग का उपयोग अभूतार्थ है, अत: वह जीव का स्वरूप नहीं है। अनादि-अनंत एकरूप द्रव्य के ऊपर दृष्टि लगाने से प्रत्येक गुण की पर्याय द्रव्य-गुण-पर्याय में उछलती हैं। पर्याय एक अंश है, सर्वांश अर्थात् सारा द्रव्य नहीं है।

द्रव्य अकृत्रिम, गुण भी अकृत्रिम शाश्वत है, उसमें सर्वभेद गौण हैं। पराश्रयरहित एकरूप पूर्ण द्रव्य त्रैकालिक भूतार्थ है। उनके आश्रय से प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन, पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन, पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान और पूर्ण शुद्धतारूप मोक्षदशा प्रगट होती है, ऐसा अपार अचिंत्य सामर्थ्य अंदर है। दृशिशक्ति के उपयोग में किसी का भेदरूप

–विशेषरूप प्रतिभास नहीं है। उपयोग में परालंबी उपयोग का—व्यवहार का अभाव है, प्रत्येक गुण का व्यापार–कार्यस्वभाव उपयोग है, वह अपने कारण–कार्य से है; अन्य ज्ञेय है, इसलिए उपयोग है, ऐसा नहीं है।

दर्शन उपयोग में भी कर्म–ग्रहण का अभाव है। उपयोग कहीं बाहर से लाना पड़े, ऐसा नहीं है, उसका पर के द्वारा हरण नहीं है, शुद्धोपयोग स्वभावी उपयोग, वही आत्मा का उपयोग है। परसत्तावलंबी उपयोग बंध का कारण होने से वह आत्मा का उपयोग नहीं है, उसमें भेदरूप षट्कारकों का अभाव है। अनाकार अ=नहीं, आकार=स्व–पर ऐसे कोई भेद उसमें नहीं हैं। उसका विषय भी भेदरूप नहीं है। ऐसे दृशिशक्ति अनंत गुणों के साथ आत्मद्रव्य में है। नित्य सामान्य पर दृष्टि लगाने से, निश्चय परमात्मद्रव्य को ही एकरूप उपादेय–आश्रयरूप करने से स्वतंत्र स्वाश्रयी षट्कारक पराश्रय के अभावरूप स्वयमेव अनेकांत है। यह गहरी बात है, तथापि अंदर में महिमा लाकर गहराई से पता लगाया जाए तो स्वयं परमात्मा हो जाता है।

आत्मा में दृशिशक्ति नामक गुण अनादि अनंत है, उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेशी है, पर्याय का काल एक समय है, सत्तामात्र सर्व पदार्थ का सामान्य प्रतिभासरूप उपयोग होना, वह अपने कारण से है। जो जीव इस अनंत शक्ति के धारक चैतन्य–सूर्य में दृष्टि लगाते हैं, उन्हें जीवनज्योति जागती रहती है। आत्मावलोकन ग्रंथ में कहा है कि आत्मा में अद्‌भुत से भी अत्यंत अद्‌भुतता तो यह है कि जिस समय दृशिशक्ति द्वारा सामान्य अवलोकन उपयोग होता है, उसी समय साथ में ज्ञानगुण का उपयोग जो कि छद्मस्थ को (क्रमिक उपयोग) है, समस्त विशेष स्व–पर को स्पष्ट जानता है, फिर भी उसमें आश्चर्य नहीं है, पर की मदद नहीं है, न पुण्य–पाप, व्यवहार की मदद है और व्यवहार–राग को जानने जाए, ऐसा उपयोग आत्मा का स्वरूप नहीं है।

अहा, वस्तुस्थिति.... जिस प्रकार द्रव्य–गुण नित्य सामान्य एकरूप हैं, उनमें व्यवहार नहीं है, उसी प्रकार द्रव्याश्रय द्वारा जो अनंत गुण की पर्यायें उछलती–परिणमित हो रही हैं, उसमें भी व्यवहार का अंश जरा भी नहीं है।

अज्ञानदशा में निर्मल श्रद्धा-ज्ञानादि का परिणमन नहीं था, किंतु जब अनंत गुणों के धारक अखंड ध्रुव आत्मद्रव्य को स्वसन्मुखता से लक्ष्य में लिया, तब से अनित्य उपादान में निर्मल श्रद्धा-ज्ञानादि का परिणमन पराश्रयरूप व्यवहार की अपेक्षा रहित होने लगा।

(4) **ज्ञानशक्ति**—साकार उपयोगमयी ज्ञानगुण भी स्वतंत्र व निरपेक्ष स्वभावी है। निश्चय स्व से है, ऐसा स्वीकार करने के बाद व्यवहार से ज्ञान कराया जाता है कि व्यवहार से सापेक्ष है; यदि स्वाश्रय में वर्तता हो तो यह अभूतार्थ का ज्ञान भी व्यवहार ज्ञेय है।

जिसमें है, वहाँ से आता है; नहीं है, वहाँ कहाँ से आये ? प्राप्त की प्राप्ति है। पद्मनंदिपंचविंशति में कहा है कि भगवान ने अंदर का खजाना खोल दिया है, उसे कौन न ग्रहण करे ! निमित्त है, वह व्यवहार है, किंतु स्व को न जाने, वहाँ तक उसे व्यवहार ज्ञेय कौन कहेगा ? **प्रश्नः**—स्वाध्याय के समय पद्मपुराण क्यों नहीं लेते, समयसार क्यों पढ़ते हैं ? **उत्तरः**—संयोगदृष्टिवान को ऐसा दिखता है किंतु ऐसा नहीं है। निमित्त भी उसके समय पर आता है, ज्ञान की जैसी योग्यता हो, वैसा ज्ञेय होता ही है। अरे, परलक्षी परिणमन आत्मा का नहीं है, अक्षरों का अवलंबन लेनेवाला ज्ञान दिखता है, वह आत्मा का उपयोग नहीं है। निरालंबी द्रव्य-गुण-पर्याय है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वह स्व से है, निमित्त तथा व्यवहार से निरपेक्ष है, यह बात अज्ञानी को रुचिकर नहीं है।

वाणी का कर्ता आत्मा नहीं है, वाणी संबंधी ज्ञान का कर्ता आत्मा नहीं है; अक्षर-शास्त्रादिक का अवलंबन करे, वह उपयोग आत्मा का नहीं है। श्री अमृतचंद्राचार्य ने अजब-गजब की बात कही है। दुनियाँ तो तुझमें नहीं है किंतु उस संबंधी व्यवहारज्ञान भी तेरे स्वरूप में नहीं है। अरहंत-सिद्धभगवान जगत के द्रव्य हैं, उनका लक्ष्य छोड़कर निरपेक्ष तत्त्वदृष्टि द्वारा अंदर में आ, तब व्यवहारज्ञान व्यवहार से सच्चा है। ज्ञान-उपयोग के स्वाश्रयी परिणमन रूप उपयोग में पर का आधार-कर्ता-कर्म-करण नहीं है। रागादि व्यवहार का कारण या कार्य उसमें बिलकुल नहीं है। जैसे नित्य उपयोगवान जीव का मरण

नहीं है, वैसे स्वाश्रयरूप उपयोगधारा-निजपरिणाम है, उसका भी नाश नहीं होता। रागादि हैं, वह सब निज परिणाम नहीं हैं।

शास्त्रों का ज्ञान आत्मा का उपयोग नहीं है। उपयोग तो उसे कहते हैं जिसमें पर का अवलंबन न हो। शास्त्र ने स्वसन्मुखता को 'मार्ग' कहा, वह उपयोग ने जान लिया, किंतु परलक्ष्यवाला ज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं है। जिसमें स्व-पर विशेष प्रतिभासित होता है, उसे रागादि कोई निमित्त सहायक नहीं हैं। ऐसे स्वयमेव अनेकांत को प्रगट करनेवाली ज्ञानशक्ति आत्मद्रव्य में अनंत गुण के साथ परिणमित है।

मङ्गलायतन में सुरेन्द्रनगर से यात्रासंघ का आगमन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दिनांक 3 से 7 मार्च 2018 सुरेन्द्रनगर मुमुक्षु मण्डल से श्री द्विजेश जैन सुरेन्द्रनगर के संयोजन में एक यात्रासंघ पधारा। जिन्होंने पाँच दिन तक यहाँ तीनों समय तत्त्वज्ञान का लाभ अर्जित किया। प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन के पश्चात् बहिनश्री के वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन एवं पण्डित संजय शास्त्री द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक पर स्वाध्याय कराया गया। दोपहर में पण्डित सचिन जैन एवं ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, तथा रात्रि में जिनेन्द्र भक्ति के बाद पण्डित रमेश बांझल इन्दौर द्वारा स्वाध्याय कराया गया। यात्रियों के शिविर के मध्य एक दिन बहिनश्री का सम्यक्त्व दिवस भक्तिभाव से मनाया गया। समस्त यात्रासंघ ने तीर्थधाम मङ्गलायतन में होनेवाली सभी गतिविधियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वैराग्य समाचार

जबलपुर : जबलपुर निवासी श्रीमती अंगूरी जैन, धर्मपत्नी श्री राजकुमार जैन का 67 वर्ष की आयु में पंच परमेष्ठी के स्मरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया। आप जबलपुर के विद्वान डॉ. मनोज जैन की माताश्री थी।

सहारनपुर : श्रीमती बृजेश जैन धर्मपत्नी श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर का शान्तपरिणामपूर्वक 30-03-2018 को देहपरिवर्तन हो गया। आप बहुत ही शान्तपरिणामवाली महिला थीं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार आपके शीघ्र निर्वाण की भावना भाता है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान श्री आचार्यदेव
पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि

अग्रायणीय पूर्वांश के ज्ञाता आचार्य धरसेन के ज्ञान को कुशाग्रबुद्धि से धरण करनेवाले भगवान श्री पुष्पदंत व भूतबलि आचार्य से दिगम्बर समाज का प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। ऐसे महान आचार्यवरों के जीवन के बारे में भविष्यवाणीवत् आख्यान करती कथा 'श्रुतावतार' में दी गई है, वह इस प्रकार है —

'भरतक्षेत्र के बांमिदेश-ब्रह्मदेश में वसुंधरा नाम की नगरी होगी। वहाँ के राजा नरवाहन और रानी सुरूपा, पुत्र न होने के कारण खेदखिन्न होंगे। उस समय सुबुद्धि नाम का सेठ उन्हें पूजा करने का उपदेश देगा। तद्नुसार पूजा करने पर राजा को पुत्रलाभ होगा और उस पुत्र का नाम 'पद्म' रखा जाएगा। तदंतर राजा सहस्त्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराएगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजकृपा से स्थान-स्थान पर जिनमंदिरों का निर्माण कराएगा। इसी समय बसंत ऋतु में समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठ के साथ जिनपूजा करके रथ चलावेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगधसम्राट को मुनींद्र हुआ देख, सुबुद्धि सेठ के साथ विरक्त हो दिगंबरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आएगा। वह जिनदेव को नमस्कार कर मुनियों की तथा परोक्ष में धरसेन गुरु की वंदना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे पढ़ेंगे कि गिरनार के समीप गुफावासी धरसेन मुनिश्वर अग्रायणीय पूर्व की पंचम वस्तु के चौथे प्राभृतशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करनेवाले हैं। धरसेन भट्टारक कुछ दिनों में नरवाहन और सुबुद्धि नाम के मुनियों को पठन, श्रवण और चिंतन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशी को शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमें से एक की भूत (व्यंतरजाति के देव) रात्रि को बलिविधि (पुष्पों से पूजा) करेंगे और दूसरे के चार दाँतों को सुंदर बना देंगे।

अतएव भूत-बलि के प्रभाव से नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जाने से सुबुद्धिमुनि का नाम पुष्पदंत होगा।'

इस आख्यान के बारे में इतिहासविदों के भिन्न-भिन्न मत होने पर भी, इससे यह फलित होता है, कि भगवान पुष्पदंत आचार्य व भूतबलि आचार्य का दीक्षा नाम कुछ अन्य था, परंतु प्रसिद्ध कथान्यास से उनके नाम 'पुष्पदंत और भूतबलि' रखा गया था। उपरोक्त भविष्यवाणी में इतिहासविदों के भिन्न-भिन्न मत होने से उसे गौण करके इतिहासकारों के अभिप्राय अनुसार आचार्य पुष्पदंत वसुंधरा नगरी के राजा नरवाहन थे। आचार्य पुष्पदंत राजा जिनपालित के समकालीन तथा उनके मामा थो। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजा जिनपालित की राजधानी वनवास ही आपका जन्मस्थान है। आप वहाँ से चलकर अर्हद्बलि आचार्य के स्थान पुण्ड्रवर्धन आये और उनसे दीक्षा लेकर तुरंत उनके साथ ही महिमानगर चले गए जहाँ अर्हद्बलि ने बृहद् यति सम्मेलन एकत्रित किया था।

जब महिमानगरी में सम्मिलित यतिसंघ को धरसेनाचार्य के समाचार मिले, तब आचार्यवर अर्हद्बलि ने श्रुत-रक्षासंबंधी उनके अभिप्राय को समझकर अपने संघ में से दो साधु चुने। वे दोनों साधु विद्याग्रहण करने और उसका स्मरण रखने में समर्थ, अत्यंत विनयशील, शीलवान, देश, कुल, जाति से शुद्ध और समस्त कलाओं में पारंगत थे। उन दोनों को धरसेनाचार्य के पास गिरिनगर (गिरनार) भेज दिया। धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की। एक को अधिकाक्षरी और दूसरो को हीनाक्षरी मंत्र-विद्या देकर उन्हें षष्ठोपवास से सिद्ध करने को कहा। जब विद्याएँ सिद्ध हुई तो एक बड़े-बड़े दाँतोंवाली और दूसरी कानी, देवी प्रगट हुई। उन्हें देखकर चतुर साधक मुनियों ने जान लिया, कि उनके मंत्रों में कुछ त्रुटि है। उन्होंने स्वयं विचारपूर्वक उन (मंत्रों) को सुधारकर पुनः साधना की, जिससे देवियाँ अपने स्वाभाविक सौम्यरूप में प्रकट हुई। उनकी इस कुशलता से गुरु ने जान लिया, कि ये दोनों सिद्धांत सिखाने के योग्य पात्र हैं। फिर उन्हें क्रम से

सब सिद्धांत पढ़ा दिया। यह श्रुताभ्यास आषाढ़ शुक्ला एकादशी को समाप्त हुआ। उसी समय देवों ने पुष्पोपहारों द्वारा, शंख, तूर्य और वादित्रों की ध्वनि के साथ आचार्य नरवाहन की बड़ी पूजा की। इसी से आचार्यश्री ने उनका नाम भूतबलि रखा। दूसरी ओर आचार्य सुबुद्धि की दंतपंक्ति अस्तव्यस्त थी, उसे देवों ने ठीक कर दी, इससे उनका नाम पुष्पदंत रखा गया। ये दो आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि षट्खंडागम के रचयिता हुए।

आचार्य पुष्पदंतजी ने गुरु से ज्ञान प्राप्त करके अपने सहधर्मी भूतबलिजी के साथ, धरसेन गुरु की आज्ञा अनुसार उनसे विनयपूर्वक विदा लेकर आषाढ़ शुक्ल 11 को पर्वत से नीचे आ गए और वहाँ से निकट अंकलेश्वर में चातुर्मास किया। चातुर्मास दरम्यान दोनों आचार्यों ने आपस में उपदेश की बहुत गंभीर चर्चा कर उपदेश को अवगाहन किया। अंकलेश्वर चातुर्मास पश्चात् आचार्य पुष्पदंत [1]वनवास नगर चले गए। कुछ समय अंकलेश्वर की ओर विहार करते-करते भूतबलि [2]द्रविड़ देश चले गए।

पुष्पदंत आचार्य ने अपने भांजे राजा जिनपालित को दीक्षा देकर उन्हें सिद्धांत का अध्ययन कराया। उसके निमित्त आपने 'बीसदी सूत्र' नामक एक ग्रंथ की रचना की, जिसे अवलोकन के लिए आपने उन्हीं के साथ भूतबलिजी के पास भेज दिया।

इस रचना के बारे में यह भी किवदंति है कि गिरिनगर से वापस लौटते समय आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि ने अंकलेश्वर (जिला-भरूच, गुजरात) में चातुर्मास बिताया व आचार्य पुष्पदंत के चले जाने के पश्चात् भी आचार्य भूतबलि वहाँ सजोत (अंकलेश्वर के पास) के जंगलों में रहे।

---

1. वनवास जो कि उत्तर कर्णाटक का ही प्राचीन नाम है। जो तुंगभद्रा और वरदा नदियों के बीच बसा हुआ है। प्राचीनकाल में वहाँ कदम्ब वंश का राज्य था। उसकी राजधानी 'वनवासि' थी; वहाँ अब भी उस नाम का गाँव विद्यमान है।
2. जो कि दक्षिण भारत का वह भाग है, जो चेन्नाई (मद्रास) के सेरिंगपट्टम और कामोरिन तक फैला हुआ है और जिसकी प्राचीन राजधानी कांचीपुरी थी।

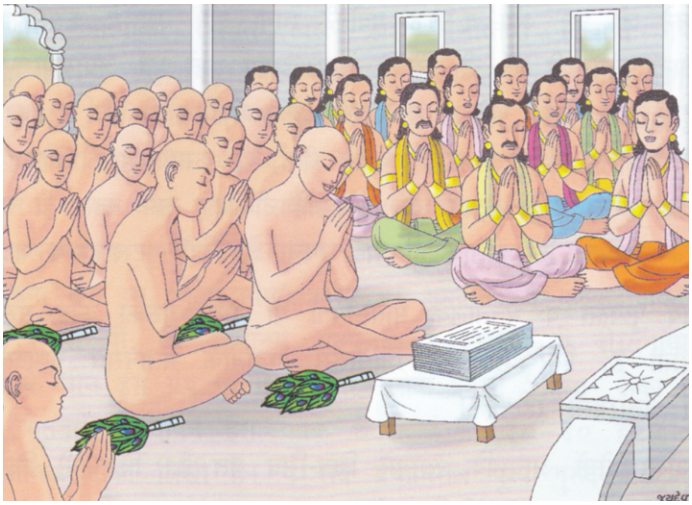

श्रुतपंचमी को षट्खंडागम की पूर्णाहूति पर चतुर्विध संघ द्वारा जिनवाणी की पूजन-भक्ति

पुष्पदंत आचार्य द्वारा भेजे गए 'बीसदी सूत्र' आचार्य भूतबलि को यहीं मिला। भूतबलि आचार्य ने आचार्यदेव की अल्पायु जानकर 'महाकर्म-प्रकृतिपाहुड़' के विच्छेद-भय से द्रव्यप्रमाण से लगाकर आगे की ग्रंथ रचना ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को पूर्ण की। अत: ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को चतुर्विध संघ ने षट्खंडागमश्रुत की पूजा की व बड़ा महोत्सव किया। (तब ही से जिनेन्द्र शासन में यह उत्सव गाँव-गाँव में श्रुत की पूजा सह बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरी में भी यह उत्सव बड़े भावपूर्ण भावना व उत्साह सह मनाया जाता है।) वहाँ (अंकलेश्वर में) आज भी भूतबलि आचार्य की प्रतिमा विराजमान है।

तत्पश्चात् जिनपालित मुनि के साथ आचार्य भूतबलि ने पूर्ण रचना आचर्य पुष्पदंत के पास भेज दी; जिसे आचार्यवर पुष्पदंत देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और वहाँ भी चतुर्विध संघ ने षट्खंडागम शास्त्र की पूजा की व बड़ा उत्सव किया।

इस तरह षट्खंडागम शास्त्र के रचयिता आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि दिगम्बर शासन की पट्टावलियों में धरसेनाचार्य के पश्चात्, पुष्पदंताचार्य

का 30 वर्ष का समय दिखाया गया है। उसके पश्चात् भूतबलि आचार्य का काल दिखाया गया है। इस पर से यह प्रतीत होता है कि पुष्पदंत आचार्य भूतबलि आचार्य से ज्येष्ठ थे।

यद्यपि जैसा कसायपाहुड़ सिद्धांत ग्रंथ प्राचीन है, वैसा ही यह षट्खंडागम सिद्धांत ग्रंथ भी प्राचीन है; फिर भी दोनों की रचना शैली में काफी अंतर है; भगवान की दिव्यध्वनि में से गणधर भगवंत ने जो 12 अंग व 14 पूर्वों की रचना की, उसमें से कसायपाहुड़ की रचना पंचमपूर्व-ज्ञानप्रवादपूर्व से की गई थी; जबकि षट्खंडागम दूसरे पूर्व-अग्रायणी पूर्व से की गई है। कसायपाहुड़ में जहाँ जीव के परिणाम व मोहनीय कर्म संबंधित ही चर्चा है; वहाँ षट्खंडागम शास्त्र में जीव के परिणाम व आठों कर्म संबंधित चर्चा है। कसायपाहुड़ की टीका ग्रंथ का नाम जयधवला टीका है; जबकि षट्खंडागम शास्त्र की टीका का नाम धवला व छठवें खंड की टीका का महाधवला है। कसायपाहुड़ पद्य रचना है; वहाँ षट्खंडागम गद्य रचना है।

आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि के माता-पिता या दीक्षा गुरु का कोई सुस्पष्ट इतिहास ज्ञात नहीं होता है, फिर भी कुछ आधारों से विद्वानों के मतानुसार पुष्पदंत आचार्य की कर्णाटक में ही जन्मस्थली रही हो।

विद्वानों का दोनों आचार्य के समय में भिन्न-भिन्न मत हैं। फिर भी विशेष तौर पर दोनों आचार्यों का समय क्रमशः वी. नि. सं. 593-633 (ई. सं. 66-106) व वी. नि. सं. 593-683 (ई. सं. 66-156) सुयोग्य प्रतीत होते हैं।

भगवान अर्हद्बलि आचार्य से आचार्यदेव धरसेनजी की जो परंपरा चली, वही यहीं पूर्ण हो जाती है।

षट्खंडागम रचयिता आचार्यदेव पुष्पदंत व भूतबलि भगवंत को कोटि-कोटि वंदन।

साभार : भगवान महावीर की आचार्य परंपरा

अभिप्राय

1. कषाय के वश से जिनवर की आज्ञा के सिवाय यदि एक अक्षर भी कहे तो वह जीव निगोद चला जाता है इसलिए अपनी पद्धति बढ़ाने के लिए अथवा मानादि का पोषण करने के लिए उपदेश देना योग्य नहीं है ॥11 ॥
2. यथार्थ उपदेश देनेवाले वक्ता का कारण के वश से क्रोध करके कहना भी क्षमा ही है क्योंकि उसका अभिप्राय जीवों को धर्म में लगाने का है और जो आजीविका आदि के लिए यथार्थ उपदेश नहीं देता वह अपना और पर का अकल्याण करने से उसकी क्षमा भी अभिप्राय के वश से दोष रूप है ॥14 ॥
3. दान देनेवाला तो अपने मान का पोषण करने के लिए देता है और लेनेवाला लोभी हो दूसरे में अविद्यमान गुणों को भी गाकर लेता है सो दोनों ही मिथ्यात्व और कषाय को पुष्ट करते हैं ॥31 ॥
4. मिथ्यादृष्टि ही धर्म के किसी अंग का भी सेवन करने में अपनी ख्याति-लाभ और पूजा का आशय रखता है अर्थात् धर्म में भी माया अर्थात् छल करता है ॥44 ॥
5. जो जीव क्रोधादि कषायों से संयुक्त होकर अपनी बड़ाई आदि के लिए धर्म का सेवन करते हैं, उन्हें बड़ाई भी नहीं मिलती और कषाय संयुक्त होने से धर्म भी नहीं होता ॥55 ॥
6. दूसरे जनों से प्रशंसा चाहने के लोभ से अर्थात् मुझे सब अच्छा कहेंगे-इस अभिप्राय से जिनसूत्र के विरुद्ध न बोलकर सूत्रानुसार ही यथार्थ उपदेश देना योग्य है ॥56 ॥
7. केवल अज्ञान से कोई जीव यदि पदार्थ को अयथार्थ भी कहे तो आज्ञा भंग का दोष नहीं है परंतु कषाय के योग से एक अंश मात्र भी अन्यथा कहे या करे तो अनंत संसारी होता है। अत: धर्मार्थी पुरुषों को कषाय के वश से जिनाज्ञा भंग करना येग्य नहीं है और जिनको मानादि कषायों का पोषण ही करना हो उनकी कथा नहीं है ॥98 ॥

8. कोई कहे कि 'तुम्हें राग-द्वेष है इसलिए तुम ऐसा उपदेश देते हो' तो उससे ऐसा कहा है कि 'किसी लौकिक प्रयोजन और राग-द्वेष की पुष्टि के लिए हमारा उपदेश नहीं है, केवल धर्म के लिए सुगुरु और कुगुरु के ग्रहण-त्याग कराने का हमारा प्रयोजन है' ॥104 ॥
9. इस निकृष्ट काल में धर्मार्थी होकर धर्म सेवन करना दुर्लभ है। लौकिक प्रयोजन के लिए जो धर्म का सेवन करते हैं सो नाममात्र सेवन करते हैं, धर्म सेवन का गुण जो वीतराग भाव उसको वे नहीं पाते सो ऐसे जीव बहुत ही हैं ॥112 ॥
10. जो जीव लौकिक प्रयोजन साधने के लिए पाप करते हैं, वे तो पापी ही हैं परंतु जो बिना प्रयोजन ही अपनी मान कषाय को पोषने के लिए पण्डितपने के गर्व से जिनमत के विरुद्ध उपदेश करते हैं, वे महापापी हैं ॥121 ॥
11. अभिमान विष को उपशमाने के लिए अरिहन्त देव एवं निर्ग्रन्थ गुरुओं का स्तवन किया जाता है अर्थात् गुण गाये जाते हैं पर उससे भी मान का पोषण करना कि 'हम बड़े भक्त और बड़े ज्ञानी हैं तथा हमारा बड़ा चैत्यालय है आदि' सो यह उनका अभाग्य है ॥144 ॥

❀❀❀

ज्ञानी-अज्ञानी

1. गृह व्यापार के परिश्रम से खेदखिन्न कितने ही अज्ञानी जीवों का तो विश्राम स्थान एक स्त्री ही है परंतु ज्ञानी जीवों का जिनभाषित श्रेष्ठ धर्म ही विश्राम का स्थान है ॥गाथा 20 ॥
2. उदर भरकर अपनी पर्याय तो ज्ञानी-अज्ञानी दोनों ही पूरी करते हैं परंतु उनकी क्रिया के फल में अंतर तो देखो कि अज्ञानी तो अत्यंत आसक्तपने के कारण नरक जाकर वहाँ के दु:ख भोगता है और ज्ञानी भेदविज्ञान के बल से कर्मों का नाश कर शाश्वत सुखी हो जाता है ॥21 ॥
3. शुद्ध गुरु के मुख से शास्त्र सुने तो श्रद्धानपूर्वक धर्म में रुचि होती है पर अश्रद्धानी के मुख से शास्त्र सुनने पर श्रद्धान निश्चल नहीं होता ॥22 ॥

4. जो अत्यंत पापी जीव हैं वे तो धर्म के पर्वों में भी पाप में तत्पर होते हैं परंतु जो ज्ञानी धर्मात्मा हैं, निर्मल श्रद्धानी हैं, वे जीव किसी भी पाप पर्व में धर्म से चलायमान नहीं होते ॥29 ॥
5. जिन अज्ञानियों के मिथ्यात्वादि मोह का तीव्र उदय है, उनके कुगुरुओं की भक्ति-वंदना रूप अनुराग होता है परंतु भव्य जीवों की वीतरागी सुगुरुओं पर तीव्र प्रीति होती है ॥41 ॥
6. निर्मल श्रद्धावान ज्ञानी सज्जनों की संगति से निर्मल आचरण सहित धर्मानुराग बढ़ता है और वही धर्मानुराग अशुद्ध मिथ्यादृष्टि अज्ञानियों की संगति से दिन-दिन प्रति प्रवीण पुरुषों का भी हीन हो जाता है ॥47 ॥
7. जिस स्थान पर जैन सिद्धांत का ज्ञानी गृहस्थ तो असमर्थ हो और अज्ञानीजन समर्थ हों वहाँ धर्म की उन्नति नहीं होती और धर्मात्मा जीव अनादर ही पाता है ॥49 ॥
8. कई अज्ञानी जीव जिनमत की अवज्ञा करते हैं, जिससे नरकादि के घोर दु:ख पाते हैं और ज्ञानियों के हृदय उन दु:खों का स्मरण करके भय से थरथर काँपते हैं ॥69 ॥
9. कितने ही जीव तो कुलक्रम में आसक्त हैं, जैसा बड़े करते आये वैसा करते हैं, कुछ निर्णय नहीं कर सकते और कितने ही जीव जिनवाणी के अनुसार निर्णय करके जिनधर्म को धारण करते हैं सो इन दो प्रकार के जीवों के अंतरंग में देखो कि कितना बड़ा अंतर है ! ये बाह्य में तो एक जैसे दिखते हैं, पर इनके परिणामों में बहुत ज्यादा अंतर है ॥74 ॥
10. मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले अज्ञानियों को सैकड़ों विघ्न आते हैं तो भी पापी जीव कुछ नहीं कहते परंतु दृढ़ सम्यक्त्वी ज्ञानियों को पूर्व कर्म के उदय से यदि विघ्न का एक अंश भी आ जाता है तो उसे धर्म का फल प्रकट कर कहते हैं ॥84 ॥
11. ज्ञानी जीव को विघ्न भी उत्सव और अज्ञानी को परम उत्सव भी महा विघ्न है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीव को पूर्व कर्म के उदय से यदि कोई उपसर्ग आदि भी आ जाए तो वहाँ उसकी श्रद्धा निश्चल रहने से पाप

कर्म की निर्जरा होती है और पुण्य का अनुभाग बढ़ जाता है, जिससे उसे भविष्य में महान सुख होगा। अत: उसे विघ्न भी उत्सव के समान है जबकि मिथ्यात्व सहित जीव के किसी पूर्व पुण्य कर्म के उदय से वर्तमान में तो सुख सा दिखाई देता है, पर उसे वह अत्यंत आसक्तिपूर्वक भोगता है, जिससे उसके तीव्र पाप का बंध होने से आगामी नरकादि का महान दु:ख ही होता है। अत: मिथ्यादृष्टि को उत्सव भी विघ्न के समान है ॥85 ॥

12. सम्यक्त्व रूपी रत्नराशि से सहित ज्ञानी पुरुष धन-धान्यादि वैभव से रहित होने पर भी वास्तव में वैभव सहित ही हैं और सम्यक्त्व से रहित अज्ञानी पुरुष धनादि सहित हों तो भी दरिद्र हैं ॥88 ॥
13. ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को धर्मकार्य के समय में यदि कोई व्यापारादि का कार्य आ जाए तो वह उसे दु:खदायी जान धर्मकार्य को छोड़कर पाप कार्य में नहीं लगता है, यह ही सम्यग्दृष्टि का चिह्न है तथा जिसको धर्मकार्य तो रुचता नहीं, जैसे-तैसे उसे पूरा करना चाहता है और व्यापारादि को रुचिपूर्वक करता है, सो यह ही मिथ्यादृष्टि का चिह्न है - ऐसा जानना ॥89 ॥
14. कोई जीव आगम रहित तपश्चरण आदि क्रियाओं का आडम्बर अधिक करते हैं सो उससे अज्ञानी मूर्ख जीव तो रंजायमान होते हैं परंतु ज्ञानियों के द्वारा तो वह निंदनीय ही है ॥100 ॥
15. ज्ञानी जीव ही धर्म के स्वरूप को जानते हैं, अज्ञानी नहीं ॥117 ॥
16. जो जीव नीचे गिरने रूप आलंबन को ग्रहण करते हैं अर्थात् अणुव्रत-महाव्रतादि रूप ऊपर की दशा का त्याग करके निचली दशा जिनको रुचती है, वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही हैं और जिनका मन ऊपर चढ़ने रूप सीढ़ी पर रहता है अर्थात् सम्यक्त्वादि ऊपर का धर्म धारण करने का जिनका भाव रहता है, वे ज्ञानी सम्यग्दृष्टि हैं ॥142 ॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

समाचार-दर्शन

भगवान महावीर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

ललितपुर : दिनांक 11 से 16 फरवरी 2018 तक बुन्देलखण्ड की धरती ललितपुर में मुमुक्षु मण्डल द्वारा भगवान महावीर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव अभूतपूर्व धर्मप्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ। यह पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के सान्निध्य में पण्डित टोडरमल स्मारक जयपुर के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी अभिनन्दनकुमार जैन देवलाली एवं मंच संचालक पण्डित संजय शास्त्री तीर्थधाम मङ्गलायतन थे।

इस महामहोत्सव में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित शान्ति पाटील, पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल, डॉ. संजीव गोधा, पण्डित पीयूष शास्त्री, जयपुर; पण्डित विपिन शास्त्री मुम्बई, डॉ. योगेश जैन अलीगंज, पण्डित राकेश शास्त्री दिल्ली, पण्डित अचल जी, पण्डित भानुजी, ललितपुर; पण्डित सुबोधजी शाहगढ़, पण्डित सुनील धवल भोपाल, पण्डित विराग शास्त्री जबलपुर आदि विद्वानों ने अपने दिव्य ज्ञान से साधर्मियों को तत्त्वज्ञान का लाभ प्रदान किया।

पण्डित संजय शास्त्री द्वारा वैराग्य-वर्षा कथा के माध्यम से रात्रिकाल में विशिष्ट प्रस्तुति प्रदान की गई। सम्पूर्ण कार्यक्रम मुमुक्षु मण्डल ललितपुर के संयोजन में सम्पन्न हुआ।

श्री समयसार महामण्डल विधान सानन्द सम्पन्न

अजमेर : दिनांक 23 फरवरी से 1 मार्च 2018 अष्टाह्निका महापर्व के पावन अवसर पर वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर द्वारा श्री समयसार महामण्डल विधान का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन एवं पण्डित सचिन शास्त्री चैतन्यधाम ने, भक्ति अध्यात्म और सिद्धान्त की ज्ञानगंगा प्रवाहित की। प्रात:काल समयसार विधान के मध्य सभी अधिकारों पर पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन द्वारा अर्थ स्पष्ट किया गया। रात्रिकाल में पण्डित सचिन शास्त्री द्वारा भक्ति एवं कक्षा के पश्चात् पण्डित संजय शास्त्री द्वारा समयसार गाथा 3 पर स्वाध्याय एवं वैराग्यमय कथा प्रस्तुत की गई। समस्त कार्यक्रम का संयोजन स्वर्गीय श्री पूनमचन्द लुहाड़िया के सुयोग्य सुपुत्र श्री नरेश लुहाड़िया एवं विनय लुहाड़िया अजमेर ने किया। विधान के ही मध्य लुहाड़िया परिवार ने जिन मन्दिर की तीनों वेदियों पर चाँदी के तीन भव्य भामण्डल स्थापित किये।

तीर्थधाम मङ्गलायतन मङ्गल विद्यापीठ
का पत्राचार पाठ्यक्रम शीघ्र प्रारम्भ

सद्धर्मानुरागी श्रीमान्.....

सादर जयजिनेन्द्र !

आशा है आप सानन्द होंगे एवं स्वाध्याय नियमित चल रहा होगा।

तीर्थधाम मङ्गलायतन अनवरतरूप से वीतरागी तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार कर रहा है। इसी शृंखला में एक और ज्ञानात्मक वृहद कार्य प्रारम्भ करने जा रहा है - **मङ्गल विद्यापीठ** - इसके माध्यम से आज की नयी पीढ़ी तत्त्वज्ञान से परिचित होवे, उसके लिए आधुनिक तकनीकी के माध्यम से तत्त्वज्ञान सीखे इसके लिए **मङ्गल विद्यापीठ पत्राचार पाठ्यक्रम** प्रारम्भ कर रहे हैं। हमारे स्तर पर इस Course की सब तैयारी हो चुकी है। इस पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से ज्ञान पिपासु जीव घर बैठे जिनागम का अध्ययन कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त कर सकेंगे। संभवतया प्रसंग पड़ने पर आपसे चर्चा भी हुई होगी।

देश की एक प्रतिष्ठित टीम इस कार्य में जुटी है। अब हम विशाल स्तर पर launch के पूर्व परीक्षण (trial) करना चाहते हैं ताकि संभावित छोटी, मोटी कमियों के बारे में जानकारी मिल सके। इस परीक्षण (trial) में आप, जो संभावित परेशानियाँ होवें उसे अवगत करावें तथा आप अन्य किसी को भी इस परीक्षण (trial) के लिए जोड़ सकते हैं। इस परीक्षण (trial) का कोई शुल्क नहीं है।

इस पत्र के साथ आपको इस कोर्स में प्रवेश हेतु जानकारी दी जा रही है।

इसी आशा के साथ.....

हम हैं आपके,

(पण्डित सुधीर शास्त्री)	**(स्वप्निल जैन)**	**(पण्डित अशोक लुहाड़िया)**
प्रबन्धक	महासचिव	निदेशक
तीर्थधाम मङ्गलायतन		तीर्थधाम मङ्गलायतन
(श्रीमती रूपल जैन)	**(पण्डित संजय शास्त्री)**	**(पण्डित सचिन जैन)**
धर्मपत्नी पण्डित सचिन जैन	पत्रिका सम्पादक	विद्वान
संचालिका : मङ्गल विद्यापीठ		तीर्थधाम मङ्गलायतन

मङ्गल विद्यापीठ

नोट - कृपया (Step by step) आपको आगे बढ़ना है -

- कृपया आप निम्न Link को Click करें।

  www.mangalayatan.com/correspondence-course

- **मङ्गल विद्यापीठ** का home page खुल जाएगा।
- home page पर Registration / Login में आपको प्रथम Registration की प्रक्रिया पूर्ण करनी है।
- प्रक्रिया में आपको Registration के बटन पर Click करना है, तत्पश्चात दिए फार्म में अपना विवरण देना है।
- Registration के पश्चात Login करना है।

आप अपनी इच्छा अनुसार कोर्स का चयन करके अध्ययन शुरु कर सकते हैं।

अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात आप परीक्षा दे सकते हैं -

Login के पश्चात अध्ययन/Exam का बटन है, उसमें आपको Exam वाले बटन को Click करना है।

Exam paper में आपको दो प्रकार के प्रश्न मिलेंगे -

(१) बहुविकल्पीय (MULTIPLE CHOICE)

(२) विस्तृत उत्तरीय (comprehensive answer)

जिसे आप कम्प्यूटर पर Type करके अथवा Print लेकर उत्तरपुस्तिका को Scan करके Exam वाले page पर संलग्न(attach) कर email अथवा डाक द्वारा हमें निम्न पते भेज सकते हैं।

श्रीमती रुपल जैन (संचालिका)

मङ्गल विद्यापीठ c/o **तीर्थधाम मङ्गलायतन**,

आगरा-अलीगढ़ मार्ग, सासनी-204216(हाथरस) उत्तरप्रदेश (India)

मोबा. : 91-8191900042 / 8449977760

ई-मेल : mangalvidyapeeth@gmail.com;

info@mangalayatan.com

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

द्रव्य वस्तु है, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। जब एक शक्ति का परिणमन होता है, तब अनंत शक्तियों की परिणति एक साथ उत्पन्न होती है - इसी को उछलना कहा जाता है। **[आत्मधर्म : जून 1983, पृष्ठ 27]**

जीव को सम्यग्दर्शनवाला कहना भी पर्याय से कथन है। जीव तो विज्ञानघनस्वरूप है। सम्यग्दर्शन पर्याय तो एक अंश है, जबकि जीव त्रिकाली विज्ञानघनस्वरूप है। **[आत्मधर्म : जनवरी 1978, पृष्ठ 26]**

आत्मा सुख का सागर होने पर भी उसने राग में एकत्वबुद्धि अनादि काल से बना रखी है, इसलिए स्वभाव से सुखांश प्रगट नहीं होता। राग के साथ एकत्वबुद्धि का धाग तोड़कर उससे भेदज्ञान करे तो स्वभाव में से सुखांश प्रगट हो।

[आत्मधर्म : जनवरी 1979, पृष्ठ 25]

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com